प्रवचन नं. १३६ गाथा-६२ से ६४ दिनाङ्क १५-११-१९७८, बुधवार
कार्तिक कृष्ण ९, वीर निर्वाण संवत् २५०४

(क्या कहते हैं) ? **जैसे वर्णादिकभाव...** वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, शुभ-अशुभभाव ये **पुद्गलद्रव्य के साथ तादात्म्यस्वरूप हैं,...** आहाहा! राग आवे, आता है-दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के विकल्पभाव, वे **पुद्गलद्रव्य के साथ तादात्म्यस्वरूप हैं,...** आत्मा के साथ तादात्म्य नहीं। आहाहा! कठिन बात! जीव-अजीव अधिकार है न!

जीव स्वभाव तो अभेद-अखण्ड, आनन्द-पूर्ण आनन्दस्वरूप आदि अभेद, उसमें जो ये राग-भेद आदि हैं, वे सब पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखते हैं। यहाँ स्वभाव की दृष्टि करानी है।

उसी प्रकार जीव के साथ तादात्म्यस्वरूप हों... ये दया, दान, राग आदि के भाव, पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखते हैं। जीव के साथ (तादात्म्य) सम्बन्ध रखें **तो जीव-पुद्गल में कोई भी भेद न रहे...** आहाहा! इस राग को यहाँ अजीव और अचेतन गिनने में आया है। आहाहा! चैतन्यभगवान आत्मा शुद्धस्वभाव में राग है ही नहीं, राग का सम्बन्ध पुद्गल के साथ लेकर, अपना स्वभाव (आत्मस्वभाव) अभेद भिन्न कर दिया है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

यह यहाँ राग और वर्ण, गन्ध से लेकर... राग शुभराग का पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। (यदि) जीव के साथ भी तादात्म्य (सम्बन्ध) होवे तो जीव-पुद्गल में कोई भेद नहीं रहा। आहाहा! **ऐसा होने से जीव का ही अभाव हो जाये...** राग अचेतन शुभराग है, वह यदि आत्मा के साथ तादात्म्य कहो तो आत्मा अचेतन हो जाये। आहाहा! ऐसी बात है।

भगवान आत्मा चैतन्य जलहल ज्योति प्रकाश की मूर्ति प्रभु तो अन्दर... आहाहा! ज्ञायक चैतन्यज्योति भगवान है। वह राग के साथ तादात्म्य हो तो आत्मा अचेतन हो जाये। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! शरीर-कर्म आदि पुद्गल अचेतन हैं, इसी प्रकार राग-

शुभ (राग) वह अचेतन है तो उसमें चेतनस्वभाव का कोई अंश नहीं है। इस कारण से राग को अचेतन (कहकर) पुद्गल के साथ तद्रूप / तादात्म्य (सम्बन्ध) कहा है। आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय का राग (पुद्गल है)। गजब बात है, भाई! क्योंकि राग में चैतन्यपने का (अभाव है)। आहाहा! ज्ञान प्रकाश का पुंज प्रभु (आत्मा)... आहाहा! एक ओर भगवान चैतन्यप्रकाश विराजमान हैं, उसके साथ में राग का-अचेतन का सम्बन्ध हो जाये तो भगवान (आत्मा) अचेतन हो जाये। (समयसार की) छठवीं गाथा में यह कहा कि ज्ञायकस्वभाव चैतन्यज्योत वस्तु है, वह यदि शुभाशुभभावरूप हो तो जड़ हो जाये। देखो! वहाँ यह कहा। आहाहा! क्योंकि यह तो चैतन्य ज्ञानरस, स्व-परप्रकाशक स्वभाव का रसकन्द जलहल ज्योति वह चैतन्य है और (जो) राग है-व्यवहाररत्नत्रय का (शुभ) राग है, वह अचेतन है। आहाहा! ७२ गाथा में भी (आस्रवों को) जड़ कहा है। छठवीं गाथा में यही कहा है कि जो ज्ञायक है, वह शुभाशुभभाव (रूप) हो जाये तो जड़ हो जाये! आहाहा! ऐसी बात है।

(आत्मा राग के साथ तन्मय हो तो) जड़ हो जाये-ऐसा दिखाया है। है न? आहाहा! चैतन्य प्रकाश की मूर्ति प्रभु में राग कैसे हो? ऐसा कहते हैं। राग की पर्याय, जड़ के साथ सम्बन्ध रखती है। आहाहा! है तो राग की पर्याय अपने में चारित्रगुण की विपरीत (दशा) आहाहा! परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखने से त्रिकाली चैतन्यज्योति-जलहल ज्योति परमात्मस्वरूप ध्रुव प्रवाह-ध्रुव की धारा, चैतन्यधारा देखने से... राग तो अचेतन है। आहाहा! ऐसी बात है। यह राग जैसे पुद्गल के साथ तद्रूप (तादात्म्य है), वैसे यदि आत्मा के साथ तद्रूप हो तो आत्मा अचेतन हो जाये। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात भाई! जैनदर्शन, जैन परमेश्वर की बात तो बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! क्योंकि चैतन्य जलहल ज्योति प्रकाश चैतन्य के नूर का पूर (अभेद आत्मा) उसमें राग का सद्भाव हो जाये तो आत्मा अचेतन हो जाये। वह तो (आत्मा तो) चैतन्य के प्रकाश की मूर्ति है। आहाहा!

ये दया, दान, व्रत, भक्ति (आदि के शुभभाव) राग है, वह पुद्गल के साथ तादात्म्य (सम्बन्ध से) है। गजब, प्रभु! क्योंकि उसमें (रागभाव में) चैतन्यपना नहीं है,

इस कारण वह अचेतन के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। आहाहा! चैतन्यप्रकाश का पूर प्रभु, (वह चेतन है), उसके साथ यदि राग (अचेतन) का तादात्म्य (सम्बन्ध) हो तो चेतन स्वयं अचेतन हो जाये। ऐसी बात कहाँ? आहाहा!

चैतन्यज्योति प्रकाश की मूर्ति प्रभु, स्व-पर प्रकाश की मूर्ति आत्मा तो त्रिकाल... आहाहा! राग को प्रकाशे-जाने, परन्तु रागरूप नहीं हो जाती। आहाहा! बहुत पर से उदास होना चाहिए, कहते हैं। यह अचेतन राग और पुद्गल एक होकर तादात्म्यसम्बन्ध है, तो उससे उदास हो जा, प्रभु! (वह राग) तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! है (अभेद आत्मा) वहाँ आसन लगा दे! ज्ञायकस्वरूप चैतन्यमूर्ति (अभेद) में (आसन लगा दे)। आहाहा! जहाँ चैतन्य जलहल ज्योति स्व-पर प्रकाशक का पूर प्रभु-ध्रुवपूर, चैतन्य के नूर के तेज का पूर प्रभु यह स्वयं है। आहाहा! इसके साथ राग का तादात्म्यसम्बन्ध कर दे (अर्थात् मान ले) तो जीव, अजीव हो जायेगा-अचेतन हो जायेगा। आहाहा! कठिन बात है प्रभु! आहाहा! जीव का ही अभाव हो जाये! **यह महादोष आता है।** है, भावार्थ?

गाथा ६३-६४

संसारावस्थायामेव जीवस्य वर्णादितादात्म्यमित्यभिनिवेशेऽप्ययमेव दोष-

अहं संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा।।६३।।

एवं पोग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पोग्गलो पत्तो।।६४।।

अथ संसारस्थानां जीवानां तव भवंति वर्णादयः।
तसमात्संसारस्था जीवा रूपित्वमापन्नाः।।

एवं पुद्गलद्रव्यं जीवस्तथालक्षणेन मूढमते।
निर्वाणमुपगतोऽपि च जीवत्वं पुद्गलः प्राप्तः।।

यस्य तु संसारावस्थायां जीवस्य वर्णादितादात्म्यमस्तीत्यभिनिवेशस्तस्य तदानीं स जीवो रूपित्वमवश्यमवाप्नोति। रूपित्वं च शेषद्रव्यासाधारणं कस्यचिद्द्रव्यस्य लक्षणमस्ति। ततो रूपित्वेन लक्ष्यमाणं यत्किंचिद्भवति स जीवो भवति। रूपित्वेन लक्ष्यमाणं पुद्गलद्रव्यमेव भवति। एवं पुद्गलद्रव्यमेव स्वयं जीवो भवति, न पुनरितरः कतरोपि। तथा च सति, मोक्षावस्थायामपि नित्यस्वलक्षणलक्षितस्य द्रव्यस्य सर्वास्वप्यवस्थास्वन -पायित्वादनादिनिधनत्वेन पुद्गलद्रव्यमेव स्वयं जीवो भवति, न पुनरितरः कतरोऽपि। तथा च सति, तस्यापि पुद्गलेभ्यो भिन्नस्य जीवद्रव्यस्याभावाद्भवत्येव जीवाभावः।

अब, 'मात्र संसार-अवस्था में ही जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्य है' — इस अभिप्राय में भी यही दोष आता है, सो कहते हैं —

वर्णादि हैं संसारी जीव के, योहिं मत तुझ होय जो।
संसारस्थित सब जीवगण, पाये तदा रूपित्व को।।६३।।

इस रीत पुद्गल वो हि जीव, हे मूढ़मति! समचिह्न से।
अरु मोक्ष प्राप्त हुआ भि पुद्गलद्रव्य जीव बने अरे॥६४॥

गाथार्थ - [अथ] अथवा यदि [तव] तुम्हारा मत यह हो कि [संसारस्थानां जीवानां] संसार में स्थित जीवों के ही [वर्णादयः] वर्णादिक (तादात्म्यस्वरूप से) [भवंति] हैं, [तस्मात्] तो इस कारण से [संसारस्थाः जीवाः] संसार में स्थित जीव [रूपित्वम् आपन्नाः] रूपित्व को प्राप्त हुए; [एवं] ऐसा होने से, [तथालक्षणेन] वैसा लक्षण (अर्थात् रूपित्वलक्षण) तो पुद्गलद्रव्य का होने से, [मूढमते] हे मूढ़बुद्धि! [पुद्गलद्रव्यं] पुद्गलद्रव्य ही [जीवः] जीव कहलाया [च] और (मात्र संसार-अवस्था में ही नहीं किन्तु) [निर्वाणम् उपगतः अपि] निर्वाण प्राप्त होने पर भी [पुद्गलः] पुद्गल ही [जीवत्वं] जीवत्व को [प्राप्तः] प्राप्त हुआ।

टीका - फिर, जिसका यह अभिप्राय है कि संसार-अवस्था में जीव का वर्णादिभावों के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है, उसके मत में संसार-अवस्था के समय वह जीव अवश्य रूपित्व को प्राप्त होता है और रूपित्व तो किसी द्रव्य का, शेष द्रव्यों से असाधारण ऐसा लक्षण है। इसलिए रूपित्व (लक्षण) से लक्षित (लक्ष्यरूप होता हुआ) जो कुछ हो वही जीव है। रूपित्व से लक्षित तो पुद्गलद्रव्य ही है। इस प्रकार पुद्गलद्रव्य ही स्वयं जीव है, किन्तु उसके अतिरिक्त दूसरा कोई जीव नहीं है। ऐसा होने पर, मोक्ष-अवस्था में भी पुद्गलद्रव्य ही स्वयं जीव (सिद्ध होता) है, किन्तु उसके अतिरिक्त अन्य कोई जीव (सिद्ध होता) नहीं; क्योंकि सदा अपने स्वलक्षण से लक्षित ऐसा द्रव्य सभी अवस्थाओं में हानि अथवा ह्रास को न प्राप्त होने से अनादि-अनन्त होता है। ऐसा होने से, उसके मत में भी (संसार-अवस्था में ही जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्य माननेवाले के मत में भी), पुद्गलों से भिन्न ऐसा कोई जीवद्रव्य न रहने से, जीव का अवश्य अभाव होता है।

भावार्थ - यदि ऐसा माना जाय कि संसार-अवस्था में जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है तो जीव मूर्तिक हुआ और मूर्तिकत्व तो पुद्गलद्रव्य का लक्षण है; इसलिए पुद्गलद्रव्य ही जीवद्रव्य सिद्ध हुआ, उसके अतिरिक्त कोई चैतन्यरूप जीवद्रव्य नहीं रहा। और मोक्ष होने पर भी उन पुद्गलों का ही मोक्ष हुआ; इसलिए मोक्ष में भी पुद्गल ही जीव ठहरे, अन्य कोई चैतन्यरूप जीव नहीं रहा। इस प्रकार संसार

तथा मोक्ष में पुद्गल से भिन्न ऐसा कोई चैतन्यरूप जीवद्रव्य न रहने से जीव का ही अभाव हो गया। इसलिए मात्र संसार-अवस्था में ही वर्णादि भाव जीव के हैं — ऐसा मानने से भी जीव का अभाव ही होता है।

गाथा - ६३-६४ पर प्रवचन

अब, 'मात्र संसार-अवस्था में ही जीव का वर्णादि... राग के साथ... वर्ण तो साधारण है। **के साथ तादात्म्य है' — इस अभिप्राय में भी यही दोष आता है, सो कहते हैं—** ६३, ६४

अहं संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा।।६३।।

एवं पोग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पोग्गलो पत्तो।।६४।।

वर्णादि हैं संसारी जीव के, योहिं मत तुझ होय जो।
संसारस्थित सब जीवगण, पाये तदा रूपित्व को॥६३॥

इस रीत पुद्गल वो हि जीव, हे मूढ़मति! समचिह्न से।
अरु मोक्ष प्राप्त हुआ भि पुद्गलद्रव्य जीव बने अरे॥६४॥

टीका - फिर, जिसका यह अभिप्राय है... जिसका यह अभिप्राय (अर्थात्) आशय, श्रद्धा आदि **है कि संसार-अवस्था में...** (वर्णादिभाव-रागभाव) जीव के हैं, भले मोक्ष अवस्था में न हो, परन्तु संसार-अवस्था में तो राग आदि का तादात्म्यसम्बन्ध है या नहीं ? आहाहा! **संसार-अवस्था में जीव का वर्णादि...** रागादि, **भावों के साथ तादात्म्य -सम्बन्ध है, उसके मत में संसार-अवस्था के समय वह जीव अवश्य रूपित्व को प्राप्त होता है...** आहाहा!

आहाहा! एक ओर राग को अजीव-अचेतन कहा, यह रूपी कहा। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु-अरूपी चैतन्यस्वरूप, उसमें राग तो रूपीस्वरूप है, कहते हैं।

आहाहा! चैतन्यस्वरूप से (वह राग) रूपी (अर्थात्) विपरीतस्वरूप से है। आहाहा! शुभराग, हों! मुख्य बात तो यह है, बाकी तो सब ठीक है, गुणस्थान-जीवस्थान आदि। आहाहा!

संसार-अवस्था में... अवस्था में, हों! संसारदशा में। आत्मा के त्रिकाल भाव में वे नहीं; यहाँ तो पर्याय की बात है। संसार की अवस्था में जीव का रंग और राग के भावों के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है, रंग और राग लिया। ठीक! दो... हुकमचन्द (भारिल्ल के काव्य में) आता है न? रंग, राग, और भेद (ये तीन)। यहाँ रंग, राग और भेद तीनों ही आ गये। ज्ञानानन्दी (पद में) है। रंग, राग और भेद, आहाहा! यहाँ भी रंग, राग और भेद की व्याख्या है। रंग, राग और भेद का पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है, ऐसा है। तुम ऐसा मानो कि संसारदशा में तो (जीव का) सम्बन्ध है न? भले मोक्ष की अवस्था में उनके साथ सम्बन्ध नहीं। तो ऐसा तेरा अभिप्राय हो तो, आहाहा! **उसके मत में संसार-अवस्था के समय वह जीव अवश्य रूपित्व को प्राप्त होता है...** भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु, संसारदशा में राग के साथ तादात्म्य हो तो आत्मा रूपित्व को प्राप्त हो जाता है। आहाहा!

जीव अवश्य रूपित्व को प्राप्त होता है... आहाहा! **और रूपित्व तो किसी द्रव्य का, शेष द्रव्यों से असाधारण ऐसा लक्षण है।** यह जड़ का-पुद्गल का रूपित्व लक्षण है। आहाहा! किसी वस्तु का अर्थात् पुद्गल का, शेष द्रव्यों से-अलग पुद्गल, वह जीवादि से भिन्न / अलग पुद्गल का लक्षण है। इसलिए रूपित्व लक्षण से लक्षित जो कुछ है, वह जीव है-ऐसा यदि तू मान ले तो हो गया! आत्मा रूपी हो गया। आहाहा!

यहाँ तो अभी व्यवहार करो—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप से कल्याण होगा। अरे प्रभु! शुभराग, आहाहा! यहाँ तो शुभभाव / राग, रंग, और भेद तीनों को पुद्गल के साथ (तादात्म्य) सम्बन्ध है (- ऐसा) कहा है। वरना तो आत्मा रूपी हो जायेगा। आहाहा! (आत्मा) रंगरूप हो जायेगा और रागरूप हो जायेगा और भेदरूप हो जायेगा और तब तो वह रूपी हो जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : कथंचित् शब्द का प्रयोग क्यों नहीं किया साहेब?

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् नहीं, बिल्कुल नहीं। अज्ञान अवस्था में तो (ये तीनों

भाव) अपने (आत्मा के) हैं, ऐसा माने, परन्तु (आत्मा) वस्तु में ये (भाव) नहीं है। आहाहा!

अज्ञान अवस्था में ये मेरे हैं, कर्ता हूँ-ऐसा माने परन्तु वस्तु के स्वरूप की दृष्टि से उस अज्ञान अवस्था में जो माना है, वह भी पुद्गल का है। आहाहा! स्याद्वाद का अर्थ ऐसा नहीं है कि ऐसा भी है और ऐसा भी है। स्याद्वाद की अपेक्षा पर्याय में, उसमें है, इस अपेक्षा से, एक पर्यायदृष्टि से मानना परन्तु स्वभाव की दृष्टि से वे रूपी हैं तो उनका तादात्म्य है नहीं, ऐसा है। कठिन मार्ग, बापू! आहाहा! चैतन्यप्रकाश का पूर प्रभु, उसे यहाँ अरूपी कहा और रंग-राग और भेद को रूपी कहा, आहाहा! तो रूपी लक्षण तो पुद्गल का है, वह लक्षण आत्मा में लगा दे तो आत्मा रूपी हो जाये-पुद्गल हो जाये। आहाहा! (तब तो) जीव तो भिन्न रहा नहीं।

चैतन्य के प्रकाश का पूर प्रभु... आहाहा! उसे भी-उसके साथ जो रंग, राग और भेद का तादात्म्यसम्बन्ध अवस्था में (अर्थात् संसार अवस्था में) मान ले तो भी आत्मा रूपी हो जाये। रूपी तो पुद्गल का लक्षण है। आहाहा! किस दृष्टि से? यह यहाँ जीवतत्त्व का वर्णन है, अकेला जीवतत्त्व! उसमें राग आदि अजीवतत्त्व का सम्बन्ध छोड़ना, वह सम्बन्ध तेरा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! अब यह बात (वाद-विवाद से) कहाँ पार पड़े!

मुमुक्षु : आत्मा में जाये तो पार पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वाद-विवाद करे तो! भाई ने कहा न कि कथंचित् करो, कथंचित् का अर्थ... ? है-पर्याय में (है), ऐसा पर्यायदृष्टि से है, वह कथंचित्, परन्तु स्वभावदृष्टि से इसमें (आत्मा में) वे (भाव) है नहीं। आहाहा! यहाँ तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का पूर प्रभु... समझ में आया? उसमें यह राग, रंग और भेद तीनों नहीं हैं। आहाहा! रंग, राग और भेद को तो पुद्गल के साथ सम्बन्ध ले लिया है। आहाहा! ऐसा ही जो पुद्गल के साथ सम्बन्ध है, वैसा ही आत्मा के साथ सम्बन्ध हो जाये तो आत्मा रूपी हो जाये! जीव का अभाव हो जाये। आहाहा! ऐसी बात है। ओहोहो! पहले से लिया है न यह - वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श आदि; रागादि; और भेद.. आहाहा! (अर्थात्) रंग, राग और भेद से भिन्न!

यह आता है, हुकमचन्दजी। का क्या कहलाता है वह? 'ज्ञानानन्दस्वभावी' (वह पद) हाँ, यह उसमें लिखा है। (कहा है) राग, रंग और भेद से भिन्न भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप है। उन्होंने-हुकमचन्दजी ने अच्छा लिखा है। उसमें संक्षिप्त में बहुत सरस लिखा है, वह इसमें से डाला है। (कहा) रंग, वर्ण से उठाया है। राग-शुभाशुभभाव से उठाया है, गुणस्थान आदि से उठाया है, भेद-निवृत्ति कर्म की निवृत्ति लब्धिस्थान यह भेद है। आहाहा! रंग, राग और भेद से निराला प्रभु (आत्मा) है। आहाहा! अरे रे! ऐसा कब सुनें! ऐसे झगड़े करते... यह तो देश सेवा करो, कल्याण हो जायेगा। किसकी-देश की सेवा? तेरा देश तो अरूपी (ज्ञायकभाव), तेरा देश तो रूपी जो रंग, राग और भेद से भिन्न... किससे भिन्न? रूपी से भिन्न तेरा देश है। भगवान आत्मा का देश असंख्य प्रदेशी और अभेद है। उस तेरे देश में तो रंग, राग और भेद का अभाव है। आहाहा! आहाहा! ओहोहो!

रूपित्व से लक्षित तो पुद्गलद्रव्य ही है। रूपीलक्षण तो पुद्गल द्रव्य (का है), आहाहा! राग भी रूपी है, भेद भी रूपी है। आहाहा! रंग, गन्ध, रस, स्पर्श वे तो रूपी (हैं ही परन्तु) शुभ-अशुभराग रूपी है (और) गुणस्थान, जीवस्थान, मार्गणास्थान रूपी, आहाहा! और भेद है, वह भी रूपी। पर्याय में भेद दिखते हैं, आहाहा! वे त्रिकाली अभेद में नहीं हैं, इस अपेक्षा से त्रिकाली को अरूपी कहा, तब भेद को रूपी कहा। अब यहाँ अभी राग से भिन्न नहीं मानते। यहाँ तो कहते हैं कि भेद से भी (आत्मद्रव्य) भिन्न है। है? आहाहा! निवृत्ति-कर्म की निवृत्ति होते-होते जो संयमलब्धि प्राप्त हो, उसे भी भेद को यहाँ तो रूपी में डाल दिया है।

आहा! एक ओर ऐसा कहना कि भाई! यह ज्ञान का-क्षयोपशम का अंश है, वह स्वयं तो निरावरण का अंश है, शुद्ध है; वह शुद्ध बढ़-बढ़कर केवल (ज्ञान) होता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक ओर यह किस अपेक्षा से? यह तो अंश है, यह स्पष्ट है। इस अपेक्षा से, परन्तु यहाँ तो जो अंश है, भेद है, आहाहा! वह तो पर्यायनय से बात कही परन्तु त्रिकाली ज्ञायक के नूर में-पूर में-तेज में वह अन्धकार-रागादि का अन्धकार उसमें है ही नहीं। आहाहा! और (यदि) होवे तो निकले नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक, भाई! आहाहा! उसमें जैनदर्शन-समयसार!! आहाहा!

प्रवचनसार में ऐसा कहते हैं कि ज्ञानी गणधर हो, उन्हें भी राग का परिणमन है, इसलिए उसके वे कर्ता हैं। आहाहा! यहाँ उसे रूपी और पुद्गल कहा। ऐई! वह ज्ञान की प्रधानता में ज्ञान का स्वभाव स्व-पर सब जानना है। इसलिए उसकी अपेक्षा लेकर वहाँ कहा। यहाँ तो कहा कि राग है, वह रूपी है; भेद है, वह रूपी है, उसे यदि आत्मा कहेगा / मानेगा तो आत्मा अचेतन और रूपी हो जायेगा। आहाहा! किस अपेक्षा से कथन (है वह यथार्थ समझना)। भेद का कथन आया नहीं? (आया है)। ११ वीं गाथा, एक तो भेद की-व्यवहार की श्रद्धा जीवों को है, भेद की और व्यवहार की प्ररूपणा परस्पर करते भी हैं और भेद का-व्यवहार का कथन जैनदर्शन में वीतराग में भी किया-बहुत किया है। आहाहा! परन्तु इन तीनों को फल संसार है। गजब बात है! आहाहा! यह बात (अभिप्राय) बदलना, भगवान! आहाहा!

अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ, आनन्दस्वरूप प्रभु (है)। आहाहा! उसकी दृष्टि में ये भाव-सभी भाव—रंग, राग और रूपी को भेद-रूपी और पुद्गल का लक्षण कहा। ऐसा है। कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। (कहते हैं) भेद को हस्तावलम्ब जानकर शास्त्र में भी बहुत कथन आता है। लिखा नहीं? बहुत कथन... बहुत कथन आता है। अब यह बात करने जाये और वह सामने (व्यवहार की बात) चर्चा में रखे! आहाहा! भाई! यह तो पर्यायनय से अन्दर रागादि हैं, वह ज्ञान कराया परन्तु इसके (आत्मा के) स्वरूप में नहीं ऐसी दृष्टि अभेद में करना है और अभेददृष्टि हुए बिना सम्यग्दर्शन नहीं होगा। आहाहा! इस दृष्टि के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता।

आहाहा! सम्यग्दर्शन, त्रिकाली भगवान ज्ञानानन्दस्वभावी प्रभु एकरूप त्रिकाली स्वभाव का स्वीकार-सत्य का (स्वीकार), उस सत्य के स्वीकार में पर्याय का स्वीकार नहीं। आहाहा! अर्थात् भेद का स्वीकार नहीं, राग का स्वीकार नहीं, निमित्त का स्वीकार नहीं। आहाहा! (तब सम्यग्दर्शन होता है)। अब ऐसी बातें! अरे! आहाहा! लोग इसे एकान्त कहकर छोड़ देते हैं। अरे! प्रभु! आहाहा! तेरी अभेद चीज़ में ये (भेद) नहीं हैं, तो (जो जिसमें) नहीं, उसका निषेध करना, वह तो यथार्थता है। आहाहा! यह तो एक श्लोक में आया न! कि भेदज्ञान होने से पहले राग का कर्ता मानो-अज्ञानभाव में। है न

कलश ? आहाहा ! किस अपेक्षा से है (यह समझना चाहिए)। परन्तु भेदज्ञान होने पर तेरी चीज़ में (आत्मा में) है नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। कठिन पड़े और महँगा पड़े (इसलिए) कहीं दूसरे प्रकार से बदल डाला जाये इसे ? इसका अभ्यास करना चाहिए, प्रभु ! आहा ! अन्दर जलहल ज्योति चैतन्य (अभेद बिराजता है)।

(प्रात:काल) पाँच से पहले, पौने पाँच बजे जरा एक स्वप्न आया, वहाँ कोई लड़का गृहस्थ का बड़ा, बड़े गृहस्थ के घर में ठहरे-बड़ा पैसेवाला कोई था, लड़का छोटा। कहा-बापू ! जो यह आत्मा अन्दर चैतन्यप्रकाश का नूर, वह आत्मा, हों ! आज पाँच बजे ! अन्दर चैतन्य का प्रकाश भगवान, वह आत्मा है, बापू ! शरीर-वरीर नहीं, हों ! (लड़का) दस-बारह वर्ष का कोई गृहस्थ का था। कहा - यह शरीर-वरीर तू नहीं है। बालक था। कहा-भाई ! बापू, बापू ! जो यह शरीर है न, वह (तू) नहीं है; अन्दर चैतन्य के प्रकाश का नूर वह आत्मा है। आहाहा ! आहाहा ! चाहे जो कोई आ गया हो, कोई था गृहस्थ का, वहाँ ठहरे थे, बड़े पैसेवाले का वह लड़का आया। भाई ! अन्दर चैतन्य के प्रकाश का नूर है-जानता है-जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... चैतन्य वह आत्मा है; (देह-शरीर) वह तो मिट्टी-धूल है।

यहाँ तो राग को भी रूपी और पुद्गल कह दिया। आहाहा ! यहाँ तो भेद को भी रूपी अजीव और पुद्गल-रूपी, अजीव अचेतन और रूपी-पुद्गल (कहा है)। आहाहा ! भाई ! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव (तीर्थंकर) परमेश्वर सत्य की बात को प्रसिद्ध करते हैं। आत्मा प्रसिद्ध कब होता है ? कि वह रूपी, भेद और अचेतन रागादि से भिन्न पड़कर, अभेद की दृष्टि करे, तब प्रसिद्ध होता है। आहाहा ! आहाहा ! नहीं तो राग, रंग और भेद तीनों को अचेतन कहा, अजीव कहा, रूपी कहा और पुद्गल कहा। आहाहा ! अरे रे ! **पुद्गलद्रव्य ही है।... रूपित्व से लक्षित तो पुद्गलद्रव्य ही है।** पुद्गलद्रव्य ही है, ऐसा कहा, देखो। अब। यह राग, भेद और रंग पुद्गलद्रव्य ही है। आहाहा ! है न ? सामने पुस्तक है। आहाहा !

मुमुक्षु : एकान्त हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्यक् एकान्त है। यह सम्यक् एकान्त है। रात्रि को प्रश्न

था न ? आहाहा ! सम्यक् एकान्त ऐसा हो, तब पर्याय में राग ओर अल्पज्ञता है, उसका ज्ञान होता है, उसका नाम अनेकान्त है। आहाहा ! पर्याय में है, ऐसा जानता है। नय के अधिकार में आया न ! आहाहा ! ऐसा मार्ग ! सुनने में कठिन पड़े ! आहाहा ! वस्तु तो इस प्रकार से अन्दर है।

जिसके-चैतन्य के प्रकाश में भेद और राग का कहाँ सम्भव है ? आहाहा ! रूपी की-वर्ण की तो बात क्या करना ? राग और भेद का भी वहाँ अवकाश कहाँ है अन्दर ? आहाहा !

मुमुक्षु : भेद, वस्तु में किस प्रकार हों ?

पूज्य गुरुदेवश्री : (यह सब) पर में-पर में, अभी जब वह अभेद में नहीं, इसलिए भेद (आदि) पर में है, ऐसा ले लिया, रूपी ले लिया-पुद्गल में ले लिया-अचेतन लिया। आहाहा ! ऐसी बात है। आहाहा ! चौरासी के अवतार इसमें से (आत्मा में से) उतर गये। आहाहा ! वहाँ जन्म-मरण रहे नहीं। आहाहा ! क्योंकि राग, रंग, और भेद पुद्गल में डाल दिये, अपने स्वभाव में नहीं। (ऐसे) अपने स्वभव की जहाँ दृष्टि हुई, भव का अन्त आ गया। आहाहा ! जन्म-मरण के अनन्त अवतार बन्द हो गये ! इस राग और भेद को अपना मानता था। आहाहा ! वहाँ तक मिथ्यात्व था और वहाँ तक अनन्त-अनन्त संसार में भटकने की उसमें (मिथ्यात्व में) शक्ति थी। आहाहा ! (परन्तु) जब आत्मा भगवान पूर्णानन्द प्रभु, अभेद प्रभु आत्मा है, उसमें रंग, राग और भेद नहीं; उन्हें अचेतन / अजीव में डाल दिया तो मुझमें (निजात्मा में) हैं ही नहीं; है तो मेरा स्वरूप अभेद है। आहाहा ! ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, संसार का अभाव हो गया। आहाहा ! ऐसी सम्यक्दृष्टि की कीमत है। इसका तो पता नहीं होता और बाह्यत्याग किया और यह किया और त्यागी हुए... लोग भी बेचारे इस बाह्य में पड़े हैं। क्या करें वे लोग ? अन्तर में ऐसे भेद, रंग का भी जहाँ त्याग है और अभेद का ग्रहण (आश्रय) है, उसकी कीमत नहीं मिलती ! है ? आहा ! दूसरा पुरुषार्थ है (लोगों को तो)। क्या हुआ ? अन्तर अभेद में रहना, वह पुरुषार्थ है। वही पुरुषार्थ है। अभेद (आत्मा) जो दृष्टि में आया और उसमें लीन (एकाग्र) विशेष हुआ, वह चारित्र है। परन्तु पहले सम्यग्दर्शन में क्या है, उसका पता नहीं और चारित्र तो कहाँ से हो ?

आहाहा! (ऐसा अभेद आत्मा) प्रभु! यहाँ ख्याल में लेना बहुत कठिन है। अन्दर ज्ञान प्रकाश का पूर-चैतन्य की जलहल ज्योति ध्रुव अभेद। आहाहा! ऐसी दृष्टि करने से भेद, रंग और राग भिन्न पड़ जाते हैं। आहाहा! इसकी (आत्मा की) पर्याय में भी आते नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय में भी (वे तीनों) नहीं आते। आहाहा!

सम्यग्दर्शन की पर्याय में तो त्रिकाली अभेद (आत्मा) आया है। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में भेद, रंग और राग नहीं आते प्रभु! आहाहा! यह कितना त्याग (हो गया)! (कितना) त्याग है? ऐसे त्याग की (दुनिया को) कीमत नहीं। आहाहा! देवानुप्रिया! और बाहर से वस्त्र बदल लिये और यह किया-कुछ करे-नग्न हो गये! कुछ धूल भी नहीं है। बाहर का त्याग-ग्रहण आत्मा के स्वरूप में है ही नहीं न! आहाहा! है? विकार का त्याग भी स्वरूप में नहीं है। (वह तो) जहाँ स्वरूप की दृष्टि होती है, उसमें (आत्मा में) स्थिरता (एकाग्रता) होने पर विकार उत्पन्न ही नहीं होता तो उसने (राग का) त्याग किया-ऐसा नाममात्र से कथन है। आहाहा! क्योंकि ज्ञायकस्वभाव विकाररूप हुआ ही नहीं, तो त्याग करना, वहाँ कहाँ रहता है? आहाहा! (समयसार) ३४ गाथा में आता है कि यह ज्ञान (स्वरूप) आत्मा, रागरूप हुआ ही नहीं, (रागरूप) हुआ ही नहीं तो राग का त्याग किस प्रकार करे? आहाहा!

अपने ज्ञायकस्वभाव में जहाँ दृष्टि हुई और उसमें जहाँ स्थिर हुआ तो वह रागरूप हुआ ही नहीं और राग (उत्पन्न) ही नहीं हुआ तो राग का त्याग किस प्रकार हुआ? ऐई! ऐसी बातें हैं। वहाँ समझ में आये ऐसा नहीं, वहाँ घर में। वहाँ आज जानेवाले हैं! एक-एक लाईन अलौकिक है। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार पुद्गलद्रव्य ही स्वयं जीव है,... ऐसा हो गया। यदि राग, रंग और भेद को जीव के साथ तादात्म्य मानो, पुद्गल के साथ तादात्म्य है, वैसा जीव के साथ मानो तो पुद्गलद्रव्य ही स्वयं जीव है (-ऐसा हुआ)! आहाहा! गजब बात है न! भेद तथा रंग और राग ये पुद्गल के लक्षण हैं। आहाहा! रूपी हैं-अजीव हैं-अचेतन हैं-जड़ हैं, उन्हें यदि आत्मा में जोड़ दो तो आत्मा, रूपी-जड़ हो गया-आत्मा पुद्गल हो गया। आहाहा! अभेद भगवान (आत्मा) भेदरूप हो गया। आहाहा! आत्मा पुद्गल हो गया। अभेद भगवान

(आत्मा) भेदरूप हो गया। आहाहा! यह समयसार! जिसका पेट बहुत गहरा!! आहाहा!

उसके अतिरिक्त दूसरा कोई जीव नहीं है। क्योंकि राग, भेद और रंग को जहाँ आत्मा के साथ तादात्म्य (सम्बन्ध) लिया, तो पुद्गल ही जीव हो गया, जीव तो भिन्न रहा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! यह कोई साधारण गाथा नहीं। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु, अकेला चैतन्यरस, स्व-पर प्रकाशक स्वभाव का पिण्ड (है)। त्रिकाली, हों! पर्याय में यह है, यह बात नहीं। ऐसा अभेद भगवान आत्मा है। उसमें भेद, रंग और राग है ही नहीं, और भेद, रंग और राग तो यहाँ पुद्गल के कहे-रूपी कहे, उसरूप यदि आत्मा हो जाये तो आत्मा, पुद्गल और रूपी हो गया। आहाहा!

आत्मा जो भिन्न-अरूपी आनन्दकन्द है (वह तो रंग, राग भेदरूप हो) तो जीव रहा नहीं। आहाहा! धीरज का काम है भाई! कहीं उतावल से आम पक जाये, ऐसी यह चीज़ नहीं है। आहाहा! और सर्वोत्कृष्ट वस्तु ही तू है। कल आया था न? आहाहा! आतमपदार्थ महाप्रभु सर्वोत्कृष्ट जगत् में जो सार (रूप) है, वह तू ही है। ऐसे आत्मा में यदि राग और भेद तथा रंग लगा दे (जोड़ दे) (इसीलिए तो) भगवान आत्मा रूपी और अचेतन हो जाये। जीवपना रहे नहीं। आहाहा! अरे रे! **इस प्रकार पुद्गलद्रव्य ही स्वयं जीव है, किन्तु उसके अतिरिक्त दूसरा कोई जीव नहीं है। ऐसा होने पर,...** ऐसा होने से **मोक्ष-अवस्था में भी...** अब मोक्ष में, **मोक्ष-अवस्था में भी पुद्गलद्रव्य ही स्वयं जीव (सिद्ध होता) है,...** वहाँ (मोक्ष में) भी पुद्गल रहा वहाँ, क्योंकि पुद्गल के साथ-रंग के साथ (भेद के साथ) अभेद (जीव) था, उसे तू जीव कहता है तो मोक्ष हुआ, वहाँ भी वह पुद्गल रहा, जीव तो भिन्न रहा नहीं।

इस संसार अवस्था में भी यदि रूपित्व जो पुद्गल का लक्षण है (वह) तुझमें (आत्मा में) आ जाये तो उस आत्मा का मोक्ष (होवे तब) मोक्ष में भी वे (रंग, राग और भेद) साथ-साथ आते हैं क्योंकि वे तादात्म्य हैं तो (जीव तो) भिन्न रहता नहीं। आहाहा! अब जैसे अभी पुद्गल हुए, उसी प्रकार मोक्ष हुआ तो पुद्गल वहाँ गया, आहाहा! यहाँ मोक्ष (अवस्था) क्यों नहीं? कि यहाँ (अभी) संसार अवस्था में उन रूपी रंग, राग और भेद को अपना माने तो उसका जो तादात्म्यसम्बन्ध (माने) तो वे तो आगे जाकर-वहाँ

मोक्ष में जाने पर भी (उनका) तादात्म्यसम्बन्ध रहेगा तो पुद्गल ही वहाँ रहेगा, वहाँ आत्मा (जीव) रहेगा नहीं। यहाँ तो अवस्था का विचार है न! मोक्ष की अवस्था अर्थात्? यह यहाँ नहीं। यहाँ तो संसार अवस्था में भी राग, रंग और भेद जो पुद्गल-लक्षण हैं, उन्हें आत्मा में लगा दे (तादात्म्यसम्बन्ध से) संसार अवस्था में (लगा दे) तो वे मोक्ष अवस्था प्रगट करे उसका मोक्ष हो, तो वह अवस्था प्रगट करे तब मोक्ष होता है, वे तो वहाँ-वहाँ रह गये, उस स्थिति में, ऐसा। जहाँ संसार अवस्था में तादात्म्य है तो आगे जाकर भी वहाँ तादात्म्य रहेगा ही। यह संसार अवस्था और मोक्ष अवस्था दो की अपेक्षा से बात लेनी है। अत्यन्त मोक्ष अवस्था निर्मल, वह यहाँ बात नहीं है - नहीं समझना है।

यहाँ तो तू कहे कि संसारदशा में-अवस्था में, द्रव्य-गुण में तो भले नहीं, परन्तु संसार की मलिन अवस्था में वह आत्मा रंग, राग और भेद से तन्मय है। तब तो तन्मयपना (रंग-राग-भेद का) वह तो पुद्गल के लक्षण हैं। (यदि ऐसा माने तो) संसार अवस्था में आत्मा रूपी-पुद्गल हो गया और संसार अवस्था पलटकर जब तू ऐसा कहता है कि मोक्ष होगा, तो मोक्ष किसका होगा? तो वहाँ भी पुद्गल ही रहेगा-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो दो अवस्था की अपेक्षा से बात है, हों! मोक्ष-निर्मल अवस्था, वह अभी यहाँ बात नहीं है।

आहाहा! क्या कहते हैं? यहाँ तो दो अवस्था के साथ मिलान करके (कहा) है कि एक इस अवस्था में भी यदि राग-रंग और भेद तेरा है-तन्मय तादात्म्यलक्षण से (तेरा है) तो वह (आत्मा) रूपी हो गया। अब तू ऐसा कहता है (मानता है) कि इस (संसार) अवस्था में एकमेक है, ऐसी दूसरी मोक्ष अवस्था होगी वहाँ भी (आत्मा तद्रूप) एकरूप रहेगा। मोक्ष-यहाँ निर्मल यह बात अभी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या आचार्य ने गजब काम किया है न! दिगम्बर सन्तों ने, केवली का सब क का घुँटाया है। आहाहा! 'क' अर्थात् आत्मा होता है, हों! 'क' 'क' 'क' अर्थात् आत्मा, यह आत्मा! यह जो राग और रंग के साथ (भेद के साथ) वह अभेद हो जाये तो आत्मा रहे नहीं। आहाहा! इसलिए अन्य (भिन्न) कोई जीव सिद्ध होगा नहीं। वह तो यदि संसार अवस्था में भी - दशा में-अवस्था में भी विकार अवस्था में भी विकार-रंग, राग और भेद जीव के त्रिकाल

साथ में (तादात्म्य) मान ले तो आत्मा अभी यहाँ रूपी हो गया! और वह आत्मा आगे जहाँ जाये, वहाँ रूपी का रूपी रहेगा। मोक्ष-निर्मल होगा, यह प्रश्न अभी नहीं है। समझ में आया?

तेरा आत्मा संसार अवस्था में भेद-रंग और रागरूप, वह आत्मा रहा, तो आत्मा रूपी हुई और यही रूपीपना उसमें तादात्म्य है तो आगे तादात्म्यपना-रूपीपना वहाँ रहेगा। समझ में आया? तेरी मोक्षदशा भी इस रूपी की हो गयी। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष अर्थात् यह निर्मल मोक्ष अवस्था, वह यहाँ प्रश्न नहीं है। यहाँ तो इन दो अवस्थाओं के साथ मिलान (तुलना) करनी है।

त्रिकाली द्रव्य-गुण में तो है नहीं परन्तु संसार अवस्था में तू रूपीपना-राग, रंग को अपना माने, तब तो आत्मा वर्तमान रूपी हुआ, भिन्न तो रहा नहीं, तो वही रूपी आगे जाने पर भी रूपीपना ही रहेगा, वहाँ अरूपी आत्मा भिन्न तो रहेगा नहीं। आहाहा! यह तो अवस्था, दो अवस्था की अपेक्षा से बात की है। समझ में आया? अब ऐसा उपदेश! अब (इसे) पकड़ने में देरी लगे, ऐसा उपदेश, भाई! मार्ग ऐसा है, आहाहा!

वस्तु में तो है नहीं, द्रव्य-गुण में तो भले है नहीं-ऐसा तू कहता है परन्तु पर्याय में तो है न? राग, रंग और भेद संसारदशा में (तो है न)? तो राग और रंग संसार अवस्था में है, तब तो (ऐसा मानने से तो) आत्मा रूपी हुआ (अरूपी) तो रहा नहीं। पुद्गल का मोक्ष हुआ। पुद्गल का मोक्ष क्या? वहाँ पुद्गल रहा... आहाहा! बहुत कठिन बात, गजब की बात है! एक-एक श्लोक! दिगम्बर सन्त, केवलज्ञानी के मार्गानुसारी हैं। आहाहा! केवलज्ञान के, केवलज्ञान को घोंटाते हैं और केवलज्ञान का विरह भुला दिया है। आहाहा! इन सर्वज्ञ परमात्मा को क्या कहना था, वह सन्तों ने कह दिया है। आहाहा! प्रभु! ऐसी बात कहाँ है! अन्यत्र तो नहीं परन्तु अभी जैन सम्प्रदाय नाम धराते हैं-दिगम्बर, उसमें भी यह बात नहीं है। आहाहा! वहाँ तो बस यह त्याग करो और व्रत पालो, भक्ति करो, त्याग किया, (इसलिए) पंच महाव्रत आ गये और पंच महाव्रत धर्म है और ऐसे शुभभाव से संवर-निर्जरा होती है, लो! (ऐसी बात चलती है)।

अभी आया था न! श्रुतसागर का-श्रुतसागर दिगम्बर साधु है न! शुभभाव (से)

अनिवृत्ति (अनिवृत्तिकरण में) शुभभाव से निर्जरा होती है तो फिर आगे शुभभाव से निर्जरा क्यों नहीं होगी ? अरे रे ! प्रभु ! क्या करता है भाई ! (यहाँ तो) शुभभाव को पुद्गल कहा -रूपी कहा-अचेतन कहा-अजीव कहा। उससे संवर-निर्जरा होती है ? निर्जरा होती है ? उससे भिन्न होकर अपने ज्ञायकस्वभाव को दृष्टि में लिया तो ज्ञायकरूप परिणति हुई, वह संवर-निर्जरा है। आहाहा ! कठिन बात है। आहाहा ! कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा व्यतीत हो गयी है, अनन्त कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा व्यतीत हो गयी है। आहाहा !

ओहोहो ! (आचार्यदेव) जब इसकी टीका करते होंगे, जो विकल्प आया है, वह भी मेरा नहीं। पुद्गल के साथ (उसका तादात्म्य) सम्बन्ध है। टीका की क्रिया का मैं कर्ता नहीं। आहाहा ! विकल्प आया, उसका पुद्गल के साथ सम्बन्ध है, मेरा सम्बन्ध है ही नहीं। मैं तो उससे भिन्न रहकर जानूँ-जाननेवाला हूँ और पर्याय में भेद पड़ता है- मतिश्रुत-अवधि और मनःपर्यय भेद आदि है, उसका मैं जाननेवाला हूँ, मुझमें भेद नहीं है। आहाहा ! निमित्त को जाननेवाला, राग को जाननेवाला, भेद को जाननेवाला। आहाहा ! जिसे जानूँ उसरूप मैं नहीं। भेद को जानूँ-राग को जानूँ-निमित्त को जानूँ (परन्तु) उसरूप मैं नहीं। आहाहा ! कहो, देवीलालजी ! ऐसी बात है तुम्हारे वहाँ स्थानकवासी में है ?

मुमुक्षु : हिन्दुस्तान में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले स्थानकवासी थे न ? हम भी पहले उसी में थे न ? यह तो दृष्टान्त ! अरे ! यह तत्त्व कहाँ था, भाई ! यह भेदज्ञान करने की अलौकिक कला है।

आहाहा ! भेद से, रंग से, राग से भिन्न... आहाहा ! अभेद, अरंगी और अरागी प्रभु... आहाहा ! ऐसे चैतन्य द्रव्य की दृष्टि-ऐसे आत्मा की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यक्-यथार्थ है परन्तु राग और उसके साथ आत्मा है-ऐसी दृष्टि करना तो वह दृष्टि मिथ्यात्व है।

(अब कहते हैं) **किन्तु उसके अतिरिक्त अन्य कोई जीव (सिद्ध होता) नहीं; क्योंकि सदा अपने स्वलक्षण से लक्षित...** अब क्या कहते हैं ? कि राग, रंग और भेद यदि आत्मा के हैं तो वे सदा अपने स्वलक्षण से लक्षित **ऐसा द्रव्य सभी अवस्थाओं में हानि अथवा ह्रास को न प्राप्त होने से...** आहाहा ! क्या कहते हैं ? कि राग-भेद और रंग अपने साथ (आत्मा के साथ) का लक्षण हो तो वह लक्षण (आत्मा का) तो ह्रास किसी भी

अवस्था में नहीं होती और हानि नहीं पाता और ह्रास नहीं होता, वह तो ऐसा का ऐसा रहता है। आहाहा! बहुत बात बदली है। आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा ज्ञायकभाव जो चैतन्य रसकन्द है, उसके साथ, राग, भेद और रंग का यदि तादात्म्य (सम्बन्ध) मान ले तो द्रव्य उस लक्षण से लक्षित हुआ और उस लक्षण का किसी भी समय हानि और ह्रास नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : सिद्धान्त बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सदा अपने स्वलक्षण से लक्षित ऐसा द्रव्य... वाह! गजब बात की है न! प्रभु आत्मा को तू रागवाला माने, भेदवाला माने, रंगवाला माने तो वह लक्षण तो तेरे (आत्म) द्रव्य का हुआ, तो वह लक्षण आया, वह कभी हानि-ह्रास और हानि को प्राप्त नहीं होता। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त, हजार वर्ष पहले हुए, यह टीका (रचकर) अमृत बहाया है। आहाहा!

जिसका जो लक्षण है वह त्रिकाल... राग और रंगवाला आत्मा मानेगा तो रंग, राग और भेद तेरे आत्मा का लक्षण होगा और त्रिकाल रहेगा। कभी हानि और ह्रास उसमें मानेगा तो तेरा आत्मा रहेगा नहीं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)